



मध्य बिहार की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति

डॉ० जितेन्द्र प्रसाद
अर्थशास्त्र विभाग,
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

स्वतंत्र भारत के इतिहास में नक्सलवादी आंदोलन एक महत्त्वपूर्ण किसान आंदोलन है। यह पहला ऐसा आंदोलन है जिसमें गरीब किसानों के साथ-साथ भूमिहीन खेतिहर मजदूरों ने हिस्सा लिया और बहुत हद तक उसे नेतृत्व भी प्रदान किया। मार्क्स, लेनिन और माओ त्से-तुंग के विचारों से प्रेरित इस आंदोलन की शुरुआत मई 1967 में पश्चिम बंगाल के सिलिगुड़ी सब डिविजन के नक्सलवादी में हुई। नक्सलवाद से प्रेरित बिहार में पहला किसान विद्रोह मुजफ्फरपुर के मुसहरी ब्लाक में हुआ, लेकिन सरकारी दमन एवं सर्वोदयी नेता जयप्रकाश नारायण के शांतिपूर्ण समाज सुधार और अनुदान के हथियार ने उसे जल्दी ही ठंढा कर दिया। उल्लेखनीय है कि पुलिस और प्रशासन 'अहिंसक क्रांति' के रहनुमाओं के हस्तक्षेप को भी अपने नक्सल विरोधी अभियान का पूरक हिस्सा मानती रही। नक्सलवादी से निपटने के लिए तैनात डीआइजी बीएन सिन्हा के इस बयान से कि 'सामाजिक-सांस्कृतिक धरातल पर बदलाव लाने के लिए तमाम क्षेत्रों के उत्साही और समर्पित समाज सुधारकों को नियोजित करना प्रतिविद्रोही कार्रवाइयों का उतना ही महत्त्वपूर्ण अंग है जितना

कि पुलिस द्वारा की गई कार्रवाइयां' ऐसे प्रयासों की असलियत आसानी से समझी जा सकती है।

नक्सली बनाम निजी सेनाओं के बीच हिंसा-प्रतिहिंसा की लड़ाई का सबसे वीभत्स रूप भोजपुर और जहानाबाद जिले में मौजूद है, इसलिए इन दो जिलों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझना अति आवश्यक है। मध्य बिहार के अन्य जिलों की स्थिति भी कमोबेश यही है। इन दो जिलों की स्थिति से तुलना कर अन्य जिलों की स्थिति को समझा जा सकता है।

भोजपुर जिला पुराने शाहाबाद जिले के विभाजन के बाद 1974 में अस्तित्व में आया। इसका मुख्यालय आरा है। यूं तो इस जिले में बड़े जमींदारों की संख्या कम रही है लेकिन डुमरांव और जगदीशपुर जैसे दो बड़े जमींदार घराने रहे हैं। इसके अलावा केसठ, चौगाई, कसाप आदि अनेक छोटे-छोटे जमींदार घराने भी हैं। खुदकाश्त जमींदारी का तो इस जिले में जाल बिछा हुआ था। यह जिला स्वतंत्रता के पहले से ही किसान आंदोलन का एक तरह से गढ़ रहा था। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में यहां के किसानों ने जगदीशपुर के जमींदार बाबू कुंअर सिंह और उनके भाई अमर सिंह और उनके सहयोगी हरकिशन सिंह तथा निशान सिंह के नेतृत्व में अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह का बिगुल बजाया था। अंग्रेजों ने इस विद्रोह को दबा तो दिया किंतु किसानों के असंतोष को रोकने के लिए उन्हें कुशल प्रशासन देने एवं कृषि को विकसित करने की नीति भी अपनानी पड़ी। यही कारण है कि बिहार में सबसे पहले भोजपुर में ही अंग्रेजों ने भारतीय दंड-विधान को लागू किया और 19वीं



सदी के उत्तरार्ध में सोन नहर व्यवस्था द्वारा खेती को आधुनिक बनाने का प्रयास किया।

सन् 1873 में स्थायी बंदोबस्त के तहत लार्ड कार्नवालिस ने जिस जमींदारी व्यवस्था की शुरुआत की थी, उसके दुष्परिणाम के बारे में लार्ड हेस्टिंग्स ने 31 दिसंबर 1891 को लिखा कि इससे पूरे प्रदेश में कमजोर वर्गों का बेइंतहा शोषण हो रहा है और प्रशासन उसे दूर करने में सर्वथा अक्षम साबित हो रहा है। इस व्यवस्था का रैयतों पर सबसे बुरा प्रभाव पड़ा। मालूम हो कि इनमें अधिकांश पिछड़ी जातियों के थे। स्थायी बंदोबस्त के प्रावधानों के तहत जमींदार रैयतों से लगान तो वसूल करते ही थे, इसके अलावा अबवाब और सलामी भी लेते थे। सही है कि भोजपुर के रैयतों की स्थिति पटना और गया के रैयतों से अपेक्षाकृत बेहतर थी, लेकिन उत्पाद-लगान व्यवस्था के चलते उनकी स्थिति बंद से बंदतर होती गयी। व्यवस्था रैयतों के लिए इतनी शोषणकारी थी कि 1930 तक आते-आते रैयतों उसके ने उसके बदले नकदी लगान व्यवस्था लागू करने के लिए आवाज उठानी शुरू कर दी। इस व्यवस्था के तहत जमींदारों को पानी की आपूर्ति के लिए पूंजी लगानी होती थी, लेकिन व्यवहार में वे ऐसा नहीं करते थे, जिसके चलते जमींदारों और रैयतों के बीच कई बार संघर्ष की स्थिति पैदा हो जाती थी।

सोन नहर प्रणाली का 75 प्रतिशत हिस्सा शाहाबाद में ही पड़ता है। इसमें कोई शक नहीं कि इस व्यवस्था से कुछ हद तक कृषि का बाजारीकरण हुआ और वह मुनाफे का सौदा बनी। इसके दो परिणाम हुए—एक



तरफ जहां लगान के रूप में जमींदारों को अधिक आय हुई, वहीं दूसरी तरफ आबादी के एक बड़े हिस्से को आर्थिक स्थायित्व मिला। आर्थिक स्थायित्व प्राप्त करने वाला यह नया तबका जमींदारी उन्मूलन की कब्र से पैदा हुआ था। जमींदारी उन्मूलन के बाद पुराने बटाईदार जिनमें अहीर, कुर्मी और कोइरी जैसी पिछड़ी जातियों के अलावा भूमिहार भी काफी संख्या में थे, अब स्वयं भूस्वामी बन चुके थे। लेकिन भूमिहारों को छोड़कर अन्य पिछड़ी जातियों को वह सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं थी जिसका वे अपने को हकदार समझते थे। विडंबना है कि यही तबका आगे चलकर अंग्रेज विरोधी बना। खेती के बाजारोन्मुख होने के दो अन्य परिणाम भी सामने आए। पहला यह कि रैयत-खेतिहर, जो मुख्य रूप से पिछड़ी जातियों से आते थे, बिहार किसान सभा के झंडा तले जमींदार विरोधी आंदोलन से जुड़े तथा त्रिवेणी संघ बना कर अपने सामाजिक सुधार आंदोलन की शुरुआत भी की। दूसरा परिणाम यह हुआ कि खेती के बाजारीकरण के चलते किसानों में वर्ग विभेद बढ़ा तथा निचले स्तर पर लोग कृषि कार्यों से दूर हुए। जो किसान भूमिहीन बन गए थे, वे तो हरवाहा-चरवाहा या मजदूर बन कर कृषि कार्यों से जुड़ गए, लेकिन अधिकांश वाह्य सर्वहारा बनने के लिए बाध्य हुए। अपनी जीविका की तलाश में यह तबका कलकत्ता में या तो कुली बना या वहां के चटकलों में मजदूर। आज भी कलकत्ता के अधिकांश कुली भोजपुर के ही हैं। बड़ी जातियों के जो किसान विस्थापित हुए वे बंगाल पुलिस और अन्य सशस्त्र सेनाओं में भर्ती हुए।⁹ इस परिघटना का परिणाम यह हुआ कि भोजपुर में हथियारों की आमद हुई और एक लंपट किस्म की संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ।



भोजपुर निवासियों के मुंह से आज भी सुना जा सकेता है कि “आरा जिला घर बा त कवन बात के डर बा” या “तसलवा तोर ह कि मोर” ।

भोजपुर की तरह जहानाबाद में भी पिछले दो दशक से नक्सली समूहों और निजी सेनाओं के बीच खूनी जंग जारी है। भोजपुर के बाद सबसे ज्यादा नरसंहार जहानाबाद की धरती पर हुए हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसका कुछ-न-कुछ विशेष कारण होगा। इसलिए इस जिले की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का अवलोकन जरूरी है। सन् 1986 में स्वतंत्र जिला बनने के पहले जहानाबाद गया जिले का ही एक हिस्सा था। नक्सली गतिविधियों पर अंकुश लगाना ही इसे अलग जिला बनाने का मुख्य कारण रहा था।

एक समय में जहानाबाद सूत बुनाई का एक प्रमुख केंद्र रहा था और सोलहवीं सदी में यहां का बना कपड़ा ‘पटना क्लॉथ’ के नाम से लाहौर जैसे दूर-दराज तक प्रसिद्ध था। 18वीं सदी में ईस्ट कंपनी की पटना में जो आठ छोटी शाखाएं थी, जहानाबाद उसमें एक था। लेकिन अंग्रेजों के शासन काल में मैनचेस्टर के कपड़ों ने इस उद्योग को यहां से मिटा दिया। परिणामस्वरूप हजारों बुनकर अपना पुस्तैनी धंधा खोकर जीविका के लिए कृषि कार्यों से जुड़ने को बाध्य हुए और उसमें से अधिकांश कृषि मजदूर बनने के लिए अभिशप्त हुए।

बहरहाल, आज जहानाबाद की मुख्य आर्थिक गतिविधि कृषि ही है। कुल कार्य बल का पच्चासी प्रतिशत हिस्सा कृषि कार्यों से जुड़ा है। इसमें



से 46 प्रतिशत जोतदार हैं, जबकि 39 प्रतिशत खेतिहर मजदूर हैं। जनसंख्या के घनत्व और बहुलांश आबादी के कृषि कार्यों से जुड़ा है। इसमें से 46 प्रतिशत जोतदार हैं, जबकि 39 प्रतिशत खेतिहर मजदूर हैं। जनसंख्या के घनत्व और बहुलांश आबादी के कृषि कार्यों से जुड़े होने के कारण ऐसी स्थिति पैदा हो गयी है कि प्रत्येक खेतिहर मजदूर के हिस्से में 0.5 हेक्टेयर खेती योग्य जमीन ही आती है, जबकि राज्य के स्तर पर यह 0.68 हेक्टेयर और देश के पैमाने पर 1.12 हेक्टेयर है।

अधिकतर संपन्न किसान राजपूत और भूमिहार जैसी बड़ी जातियों के हैं, जबकि रैयत-जोतदार और बटाईदार पिछड़ी जातियों के हैं। खेतिहर मजदूर आम रूप से दलित हैं।

जमींदारी उन्मूलन के पहले जहानाबाद का अधिकांश भाग राजा मोदनरायण सिंह की टेकारी जमींदारी के अंतर्गत आता था। इनके अलावा वहां और भी कई छोटे-छोटे जमींदार थे। इन जमींदारों का शोषण किंवदंतियों के रूप में आज भी कुख्यात है। किसानों पर अतिरिक्त लगान लादने के अलावा वे उनसे बेगार लेते थे तथा जबर्दस्ती अबवाब भी लेते थे। न सिर्फ आर्थिक ताकत के जरिये, बल्कि लाठी के बल पर भी जमींदार उनका शोषण करते थे। रैयतों की औरतों का यौन शोषण करना उनके रोजमर्रा का काम था। ऐसा करना वे अपना अधिकार समझते थे। मसौदा जमींदारी का तो यह हाल था कि दूसरे जगहों के रैयत वहां अपनी बेटियों की शारी करने से भी कतराते थे। इस बात का जिक्र बिहार के प्रथम किसान नेता स्वामी सहजानंद सरस्वती ने अपनी



जीवन 'मेरा जीवन संग्राम' में भी किया है। उल्लेखनीय है कि किसान सभा की शुरुआत सन् 1928 में मसौदा से ही हुई थी, जो बाद में चलकर किसानों का सबसे बड़ा आंदोलन बना।

किसान सभा के उद्भव के पहले भी रैयतों के कई तबके अपने-अपने जाति संगठनों के मध्यम से अपनी पीड़ा को आवाज देने लगे थे। सन् 1920 के आसपास ही ग्वाला (यादव) रैयतों एवं ऊंची जाति के जमींदारों के बीच तनाव बनने लगा था। इसका कारण यह था कि यादवों में जनेऊ धारण करने के अपने अधिकार पर जोर देने के साथ-साथ बेगारी करने और अपनी औरतों को जमींदारों के यहां दूध पहुंचाने से मना कर दिया था। ऊंची जातियों के जमींदारों ने इसे अपनी तौहीन समझा और शोषण का अपना शिकंजा उनके उपर और भी मजबूत करने लगे। कुछ जमींदारों ने तो इसका इतना बुरा माना कि उन्होंने अपने लठैतों और गुर्गों को यादवों की लरकोरी औरतों का दूध दूह कर लाने के लिए भेज दिया था।

जमींदारी उन्मूलन के बाद एक परिवर्तन यह आया कि जमींदारों के कारिंदे, मैनेजर और खाते-पीते रैयतों ने अपना दायरा बढ़ा कर जमीन पर अधिकार करना शुरू कर दिया। इस प्रक्रिया में राजपूत और भूमिहारों के अलावा कुर्मी और यादव जैसी मध्यवर्ती जातियों के अनेक रैयत भी अच्छे-खासे जमीन के मालिक बन गए। दूसरी तरफ गरीब किसानों और खेतिहर मजदूरों की स्थिति ज्यों-की-त्यों बनी रही। अब उनका दोहरा शोषण होने लगा, क्योंकि राजपूत, भूमिहारों के साथ-साथ अब यादवों, कुर्मियों में पैदा



हुए नव भूस्वामियों ने भी उनका शोषण करना शुरू कर दिया। पटना में शहरीकरण के साथ ही यादवों और कुर्मियों की संपन्नता में भी वृद्धि हुई। पटना की शहरी आबादी को सब्जी और दूध की आपूर्ति का काम इन्हीं जातियों के लोगों ने किया, जिसके चलते उनकी संपन्नता में वृद्धि हुई।

भूमि हदबंदी कानून के क्रियान्वयन की भी यही स्थिति रही। सन् 1961 में बने इस कानून के पालन में नहीं, बल्कि उसे तोड़ने में ज्यादा निरंतरता दिखती है। सन् 1980-81 में जहानाबाद में 160 ऐसे भूस्वामी थे, जिनके पास औसत 87.24 एकड़ जमीन थी। यदि भूमि हदबंदी कानून का पालन किया जाए तो इसमें कम-से-कम 4930 एकड़ जमीन को अतिरिक्त जमीन घोषित किया जा सकता है और उसे भूमिहीनों में बांटा जा सकता है। लेकिन 1986-87 तक केवल 581 एकड़ जमीन को अतिरिक्त जमीन घोषित किया गया। उसमें से भी वास्तव में 428 एकड़ जमीन का ही अधिग्रहण किया जा सका, जिसे 516 भूमिहीन परिवारों में बांटा गया। विडंबना तो यह है कि उसमें से 82 एकड़ जमीन खेती के योग्य थी ही नहीं।

संदर्भ ग्रंथ-सूची :-

1. सर्चलाईट, पटना 13 जून, 1987
2. खुदकाशत
3. के.के. दत्ता, 'बायोग्राफी ऑफ कुंवर सिंह एंड अमर सिंह'
4. देखें जॉन बीम्स की 'मेम्वायर्स ऑफ ए बंगाली सिविलियन'



5. कल्याण मुखर्जी, “भोजपुर : सोसल एंड इकॉनामिक सर्वे’ नेशनल लेबर इंस्टिट्यूट, नई दिल्ली (अप्रकाशित)
6. कल्याण मुखर्जी और राजेंद्र सिंह यादव, ‘भोजपुर : नक्सलिज्म इन दी प्लेन्स ऑफ बिहार’ राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980, पृ. 14
7. वहीं..., पृ. 51